पूज्य श्री लालचंदभाई का प्रवचन
प्रश्नोत्तरी, ता. २७-३-१९८९
शिकोहाबाद, प्रवचन नंबर P ०३

Version 2

मुमुक्षु:- ज्ञानी का जन्म होता है, तब सामान्य स्वभाव का पड़खा बाहर आता है, इसका क्या प्रयोजन है और क्या भाव है? कृपया समझाइये।

उत्तर:- अनंत-अनंत काल बीते, आत्मा ने अपना जो शुद्धात्मा, सामान्य पड़खा है, जो नित्य निरावरण और परिपूर्ण परमात्म पदार्थ है, अंदर विराजमान है, सामान्य पड़खा टंकोत्कीर्ण जिसका लक्षण परमपारिणामिकस्वभाव भाव है, वो नित्य-ध्रुव है, शाश्वत है। आत्मा, वो सामान्य पड़खा, आत्मा ने जाना नहीं आज तक और विशेष पड़खा यानि पर्याय, पर्याय में १४ गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीव-समास, राग-द्वेष-मोह, हर्ष-शोक आदि अनेक प्रकार का जो परिणाम उत्पन्न होता है, इन्द्रियज्ञान प्रगट होता है, इससे विशेष को जाना। मगर सामान्य को जाना नहीं, सचमुच सुना भी नहीं और सुनाने वाले का, कभी-कभी, उसका जन्म होता है। यानि जब ज्ञानी का जन्म होता है और ज्ञानी मिलते हैं, तो विशेष के पड़खे का ज्ञान कराते-कराते (ऐसा बताते हैं कि), उसका लक्ष्य छोड़ दे और उससे भिन्न भगवान आत्मा है, उसका लक्ष्य कर। वो है, अनंतगुणात्मक पदार्थ विद्यमान है।

परिणाम है, तो द्रव्य होना चाहिए, इतना तो अनुमान में आता है। सूर्य का प्रकाश है, तो सूर्य है ही। सूर्य का प्रकाश सूर्य के बिना, उसका विशेष सामान्य के बिना होता नहीं है। तो विशेष को सब जानते हैं, कर्ता-भोक्ता जानते हैं। मगर आत्मा अकारक-अवेदक है, केवल ज्ञायक-ज्ञाता है, शुद्ध है, परिपूर्ण है, वो पड़खा जो सामान्य पड़खा, उसका परिचय नहीं, उसकी बात ही सुनी नहीं है। तो जब ज्ञानी का जन्म होता है, तो एक पड़खा का तो परिचय है सबको, काम, क्रोध, बंधन की कथा (उसका परिचय तो है)। ये करना और ये भोगना और कर्ता है और भोक्ता है आत्मा, ऐसी बात तो सुनी और अनुभव में भी वो बात आई। मगर वो परिणाम से भिन्न पृथक आत्मा, अंदर में अनंतगुणात्मक विराजमान है, ऐसी बात बाहर कब आती है? कि जब ज्ञानी का जन्म होता है तब और ज्ञानी ने ये सामान्य पड़खा अनुभव में ले लिया (है)। सामान्य का श्रद्धान और विशेष का ज्ञान, सामान्य का श्रद्धान और विशेष का ज्ञान, ज्ञानी को दो हैं। सामान्य का अवलम्बन और विशेष, वो जानने लायक है, बस इतना ही। तो उसमें अंदर प्रयोजन ये है, प्रयोजन अभी कि, सामान्य स्वभाव का लक्ष्य करने से जीव को सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। मोक्षमार्ग प्रगट हो जाता है। विशेष के लक्ष्य से विकल्प उत्पन्न होता है।

सामान्य शुद्धम् विशेष अशुद्धम्। सामान्य स्वभाव शुद्ध है। शुद्ध को जानता है, तो संवर-निर्जरा शुद्ध पर्याय प्रगट हो जाती है और विशेष के लक्ष्य से अशुद्ध परिणाम रागादि प्रगट हो जाता है। तो विशेष का लक्ष्य छोड़ दे, विशेष को छोड़ दे नहीं। विशेष का लक्ष्य छोड़ दे, यानि विशेष में आत्मबुद्धि छोड़ दे, उसमें अहम्-बुद्धि छोड़ दे। देह नहीं छोड़ना है, देह में आत्मबुद्धि छूटती है। कर्म नहीं छूटता है, कर्म में आत्मबुद्धि छूटती है। राग नहीं छूटता है, राग में अहम्-बुद्धि छूट जाती है और स्वभाव में अहम्-बुद्धि आती है, तो अनुभव होता है। वो सामान्य पड़खे का प्रयोजन आश्रयभूत पदार्थ है। उसका आश्रय करो, उसका लक्ष्य करो, ये प्रयोजन है।

दूसरा प्रश्न?

मुमुक्षुः- उपशम और क्षयोपशम सम्यक्त्व होता है। इस काल में, उपशम और क्षयोपशम सम्यकत्व होता है, परंतु गाथा में तो क्षय की ध्वनि है, उससे क्या अभिप्राय है?

उत्तरः- इसका अभिप्राय ये है कि, होता तो है पंचम काल में। पंचम काल है ना, तो इधर क्षायिक-सम्यग्दर्शन नहीं होता है। सबसे पहले उपशम, बाद में क्षयोपशम होता है, तो भी गाथा में क्षय की ध्वनि आई। तो (इसका आशय है कि) हमेशा बात तो ऊँची करना चाहिए, बात तो ऊँची करना चाहिए। वहाँ तक न पहुँचे तो भी बात तो ऊँची करना चाहिए कि भाई! मैं दुकान (चालू) करूँगा और मैं तो पाँच-पच्चीस लाख रुपया कमानेवाला हूँ। फिर बँगला लूँगा, मोटर भी लूँगा। वो तो दृष्टान्त है, ऊँची बात करना चाहिए। ऐसे विद्यार्थी परीक्षा में बैठता है ना, (तो कहता है कि) मेरा पहला नंबर आनेवाला है। वो बोलता नहीं है कि दसवाँ नंबर आयेगा। पहला नंबर बोलेगा और बाद में भले ही ग्यारहवाँ नंबर आवे। लेकिन बोलता है तो (ये बोलता है कि) पहला नंबर आयेगा।

मुमुक्षुः- लक्ष्य तो ऊँचा ही रखना चाहिए।

उत्तरः- (लक्ष्य तो) ऊँचा ही रखना चाहिए। वचने किम् दरिद्रता? वचने किम् दरिद्रता? वचन, वाणी तो ऊँची ही होनी चाहिए। समझे? आहाहा! तो ऐसी क्षय की ध्वनि आई है, तो क्षय है, क्षयोपशम ऐसा है कि आगे बढ़कर क्षय ही होने वाला है, ऐसी संधिवाला वाक्य है। ऐसी बात है कि ये पंचमकाल में जिसको सम्यग्दर्शन होता है और ज़्यादा टाइम टिकता है ना, तो छूटता नहीं है। परंपरारूप क्षायिक हो जाता है, ऐसी संधि है। इसलिए क्षय की ध्वनि (आई है)। ऊँची बात करते हैं, बस। भले क्षय हो नहीं तो कुछ नहीं पर क्षयोपशम तो हो, उपशम तो हो जाए, ऐसा। बोलो! दूसरा (प्रश्न)।

मुमुक्षुः- एक समय में राग और वीतरागता दोनों भाव साथ में होते हैं?

उत्तरः- हाँ! साथ में रहते हैं। क्या कहा?

मुमुक्षुः- रहते हैं।

उत्तरः- होते हैं ऐसा नहीं, रहते हैं।

मुमुक्षुः- रह सकते हैं।

उत्तरः- रह सकते हैं। मिथ्यात्व भी हो और सम्यकत्व भी हो, ऐसा साथ (राग और वीतरागता का) नहीं है। समझे? (राग और वीतरागता) साथ होते नहीं हैं, साथ (में) रहते हैं, अनुभव के बाद। आत्मा के अनुभव के पहले तो अकेला राग था, वीतरागभाव तो नहीं था। तो जब अनुभव हुआ, अनुभव हुआ, तो अनुभव के काल में स्वरूपाचरण-चारित्र, अंश में स्थिरता, वीतरागता (का) भाव प्रगट हो गया। और साथ में अप्रत्याख्यान आदि का राग, अस्थिरता का राग, चारित्र का दोष भी साथ में रहता है। समय एक, पर्याय एक, भाग दो हैं। समय एक, पर्याय एक, भाग दो। स्वसन्मुख आदि जो जितना भाग है, उतने में तो वीतरागता प्रगट हो गयी और परसन्मुख वाली जो पर्याय है, इतना उसमें तो राग है, क्योंकि जो वीतरागभाव न हो और अकेला राग हो तो तो मिथ्यादृष्टी और अकेला वीतरागभाव हो और राग साथ में न हो, तो-तो यथाख्यात-चारित्र होना चाहिए। ऐसा तो है नहीं। माने एक समय की पर्याय में मिश्र-अवस्था रहती है। समझे? उत्पन्न दो नहीं होता है, मगर उत्पन्न होने

के बाद साथ में रहता है। साधक को, ज्ञान-चेतना और कर्म-चेतना साथ में रहती है। उसमें विरोध नहीं है। साथ में रहने में विरोध नहीं है। जितनी उसमें वीतरागता, उसके कारण से तो निर्जरा होती है। तो जितना राग होता है, उसके कारण से अल्प-बंध भी होता है। निर्जरा भी होती है थोड़ी और बंध भी थोड़ा होता है।

मुमुक्षुः- एक समय में ही साहब, दोनों कार्य होते हैं?

उत्तरः- हाँ! एक समय में दो कार्य होते हैं। जो एक समय में एक ही कार्य हो, समझो अभी तर्क, (जो) एक ही समय में एक ही कार्य हो (जैसे) बंध ही होवे, निर्जरा न होवे, तो-तो साधक नहीं रहता है और मोक्ष नहीं होता है। अच्छा! अकेली निर्जरा हो जाये, एक समय में सब और नया बंध हो ही नहीं, तो दो-चार भव भी कैसे हों? समझे? न्याय से सब सिद्ध होता है।

मुमुक्षुः- विभाव-स्वभाव का क्या अर्थ है?

उत्तरः- फ़ज़ल में (पहले) बात चली थी कि पर्याय में जो रागादि का विभाव होता है, वो पर्याय का विभाव-स्वभाव है। पर्याय का विभाव होने का उसका धर्म है। स्वभाव यानि धर्म। धर्म यानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः नहीं। धर्म यानि, ये अपेक्षित धर्म है। धर्म यानि जो राग को धारी रखती है पर्याय, उसका नाम, उसका, पर्याय का धर्म है। तो ये विभाव हुआ, तो विभाव भी उसका पर्याय का स्वभाव है। विभाव, द्रव्य का स्वभाव तो नहीं है, मगर जब मिथ्यात्व की पर्याय हुई, तो विभाव हो गया, तो विभाव भी वो पर्याय के स्वभाव से ही है। पर्याय का स्वभाव है। राग होता है, तो राग पर्याय का स्वभाव है। तत्समय की योग्यता, स्वभाव का अर्थ धर्म। स्वभाव का अर्थ धर्म। ऐसा धर्म रहता है पर्याय में, उसका नाम विभाव-स्वभाव कहते हैं।

मुमुक्षुः- ज्ञानी पुण्य-पाप की क्रिया का कर्ता-भोक्ता नहीं है, ये कैसे हो? कृपया खुलासा करें।

उत्तरः- ज्ञानी पुण्य-पाप के परिणाम का कर्ता-भोक्ता नहीं है, तो इसका रहस्य क्या है? इसका कारण क्या है? कारण कि उसको भेदज्ञान हो गया। पुण्य-पाप से भिन्न शुद्धात्मा का अनुभव हो गया, तो पुण्य-पाप के परिणाम के साथ एकत्वबुद्धि टूट गई। एकत्वबुद्धि छूट गई, तो कर्ताबुद्धि भी गई और भोक्ताबुद्धि भी गई। तो वो एक ज्ञान और वैराग्य की शक्ति है। पुण्य-पाप का कर्ता-भोक्ता क्यों नहीं है? कि ज्ञान और वैराग्य की शक्ति प्रगट हो गई। ज्ञान क्या और वैराग्य क्या? ज्ञान का नाम तो ये है कि पुण्य-पाप से मेरा आत्मा जुदा है (और) वो निरंतर आत्मा को जानता है। पुण्य-पाप से भिन्न मेरा आत्मा है (और) निरंतर ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है, इसका नाम ज्ञान है। और वैराग्य (का अर्थ), पुण्य-पाप का परिणाम मेरा नहीं है, उसकी निरंतर उपेक्षा रहती है, इसलिए उसका स्वामी नहीं बनता है, इसलिए कर्ता-भोक्ता नहीं होता है। हाँ! अस्थिरता से थोड़ा कर्तृत्वनय है और भोक्तृत्वनय है। तो थोड़ा दुख का वेदन भी ज्ञानी को, जितने भाग में, जितना उसमें राग होता है, तो व्यवहारनय से भोक्ता कहा जाता है। मगर उस ही समय भी कर्तानय के साथ अकर्तानय है, तो साक्षी भी है, इसलिए कर्ताबुद्धि नहीं होती है। और भोक्तानय है तो भोक्ता है, इसलिए उस टाइम भी अभोक्तानय भी है, तो अभोक्तानय से ज्ञाता रहता है। इसलिए एकत्व नहीं होता है (परंतु) परिणाम जैसा है, ऐसा ज्ञान रहता है। एकत्व नहीं होता है, इसलिए पुण्य-पाप का भोक्ता नहीं है। अज्ञानी पुण्य-पाप का भोक्ता है, तो (उससे) एकत्व कर लेता है।

मुमुक्षुः- सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में ज्ञान तथा चारित्र की क्या उपयोगिता है?

उत्तरः- सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए ज्ञान की उपयोगिता क्या और चारित्र की उपयोगिता क्या है? ऐसा प्रश्न आया। तो ज्ञान की उपयोगिता तो ऐसा है, जो ज्ञान आत्मा को जानता है जब, तब जाने हुए का श्रद्धान हो जाता है, ये ज्ञान की उपयोगिता है। ज्ञान जिसको जानता है, उसका श्रद्धान बन जाता है (उसका श्रद्धान कर लेता है)। ज्ञान, इन्द्रियज्ञान पर को जानता है - तो पर मेरा है, ऐसा विपरीत श्रद्धान हो जाता है। अभी ऐसा ज्ञान अंतर्मुख होकर, इन्द्रियज्ञान बाहर रह जाता है, अतींद्रियज्ञान आत्माश्रित प्रगट होता है, तो अतींद्रियज्ञान में जब आत्मा जानने में आता है, तो जाने हुये का श्रद्धानवान बन जाता है, प्रतीति आ जाती है। जाने हुए का श्रद्धान हो जाता है। तो वो, उसके अंदर चारित्र भी साथ में प्रगट होता है। तीन अंश एक साथ में प्रगट होते हैं। तीन अंश हैं, मोक्षमार्ग के तीन अवयव हैं- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, तीन अंश वीतरागभाव है। उससे, राग से रहित है। निश्चय-मोक्षमार्ग, व्यवहार-रत्नत्रय से रहित है। जोड़े भले, (साथ में) बाजू में हो तो देह भी है, कर्म भी है, राग भी है, आहाहा! वो उसको नड़ता (अड़ता) नहीं है। वो उसमें रहता है, परिणाम, वीतरागीभाव उसमें रहता है और ज्ञायकभाव, ज्ञायकभाव में रहता है। वो बँटवारा हो गया। ख़लास!

ऐसी स्थिति होती है, तो ज्ञान का प्रयोजन आत्मा को जानकर श्रद्धान करना, इतना ज्ञान का प्रयोजन है। और उस टाइम जब ज्ञान, भेदज्ञान का विचार करता है, तब चारित्र की क्या होती है बात, कि, (तब) एक गर्भित-शुद्धता प्रगट हो जाती है। गर्भित-शुद्धता का क्या अर्थ है कि भेदज्ञान का बार-बार विचार करना, सो व्यवहार है। भेदज्ञान का बार-बार विचार करना, सो व्यवहार है। अभेद का अनुभव करना, वो तो निश्चय है। मगर निश्चय के पहले भेदज्ञान का विचार जो जीव करता है, तब गर्भित शुद्धता प्रगट होती है। यानि कषाय की मंदता उस टाइम हो जाती है, अपने-आप। कषाय की मंदता हुई इसलिए चारित्र हो गया, ऐसा नहीं। पर पूर्व-भूमिका में ऐसा बनाव बन जाता है। अंतर्मुख होता है, तो स्वरूपाचरण-चारित्र प्रगट हो जाता है। तो तीनों साथ में अविनाभाव हैं। मगर सामान्य रीति से चौथे-पाँचवे गुणस्थान वाले (को) चारित्र अंश है, मगर चारित्र सचमुच तो छठवे-सातवे गुणस्थान (वाले) मुनिराज को, चारित्र कहा जाता है। शुद्धोपयोग को चारित्र कहा जाता है।

मुमुक्षुः- सम्यग्दर्शन तो प्रगट हुआ नहीं और व्रत भी पाँचवे गुणस्थान में धारण कर सकता है। तो फिर धर्म की शुरुआत कैसे करें जीवन में?

उत्तरः- देखो प्रश्न आया कि सम्यग्दर्शन तो प्रगट हुआ नहीं। और सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ नहीं, तो प्रगट होगा, अभी छोड़ो वो बात। अभी तो थोड़ा व्रत-तप कर लेवें, तो सम्यग्दर्शन तो बाद में हो जाएगा। ऐसा कोई करता है, तो वो लाइन-फरक है। लाइन-फरक क्या है? कि आस्रव के अभाव में क्रम पड़ता है। आस्रव यानि मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, योग। हैं ना? चार भी आता है नाम (और अगर) प्रमाद ले लो, तो पाँच नाम आता है। अभी संक्षेप में करो, तो मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योग, (ऐसा) उसके अभाव का क्रम है। वो क्रम-भंग नहीं होता है। मिथ्यात्व रह जावे और अव्रत छूट जावे और व्रत हो जावे, ऐसा आता नहीं है। मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योग। मिथ्यात्व श्रद्धा गुण की पर्याय का पाप है, अव्रत चारित्र गुण की पर्याय का पाप है। समझे? अव्रत यानि पाप का त्याग नहीं है, अभी तो पाप ही है। तो ऐसा क्रम-भंग नहीं होता है।

पहले सम्यग्दर्शन होता है, बाद में देशव्रत, बाद में ये महाव्रत होता है, ऐसा क्रम है। तो अभी कोई

क्रम-भंग करे, तो इसमें दोष आ जाता है। दोष क्या आ जाता है? कि व्रतादि-भाव कर्ताबुद्धि से करता है। तो एक तो, वो बंध का कारण है और उसको चारित्र का कारण मान लिया। चारित्र का मल, वो मैल है, उसको चारित्र मान लिया, वो दोष है। हाँ! ऐसा है, कोई प्रैक्टिस करे तो कषाय की मंदता है, ऐसा समझना चाहिए। व्रत नहीं है। व्रत नहीं है मगर कषाय की मंदता है। मेरे परिणाम में कषाय की मंदता है, तो कोई दोष नहीं है। मगर उसको व्रत माने और निर्जरा का कारण माने, तो-तो दोष है। संवर-निर्जरा रूप नहीं है वो। उदयभाव है। उदयभाव बंध का कारण है।

ज्ञानी का देशव्रत का परिणाम भी बंध का कारण, तो अज्ञानी देशव्रत की प्रेक्टिस करे, तो बंध का कारण है ही, उसमें तो कोई शंका नहीं है। उसका अर्थ ये नहीं है, उल्टा नहीं लेना कि पाप करने की छूट है। पाप करने की तो (छूट नहीं है)। अन्यमति पाप का उपदेश नहीं देते, तो जैनदर्शन में कोई पुण्य छोड़ो और पाप करो, ऐसा उपदेश तो नहीं है। ऊँचे-ऊँचे जाने का उपदेश है।

एक दफ़े ऐसा हुआ भैया! कि राजकोट में गुरुदेव पधारे थे। तो एक मुंबई वाली पार्टी है, छोटुभाई विराणी, वो राजकोट के ही हैं। तो व्याख्यान में भी आवें, रात्रि-चर्चा में भी आवें। तो उसने एक प्रश्न किया कि हे गुरुदेव! आप फरमाते हैं कि आत्मा के अनुभव से ही धर्म की शुरुआत होती है। आत्मा के अनुभव के बिना धर्म की शुरुआत होती नहीं है। तो मेरा एक प्रश्न है। मेरा एक प्रश्न है कि मैं अनुभव तक तो पहुँचता नहीं और पाप तो करना ही नहीं, तो बाकी रहा पुण्य। तो पुण्य करना कि नहीं करना? फिर से, आप फ़रमाते हैं यानि सर्वज्ञ भगवान फ़रमाते हैं, कुंदकुंद आचार्य भगवान फ़रमाते हैं कि आत्मा के अनुभव से ही धर्म की शुरूआत होती है और लीनता से वृद्धि होती है और पूर्ण लीनता से मोक्ष होता है। ऐसी स्थिति तो हम कर सकते नहीं हैं, वहाँ तक (तो) हम पहुँचते नहीं हैं। हमारी पहुँच नहीं है अभी। समझे? और पाप तो करना नहीं है। क्योंकि पाप करने से तो निगोद में, नरक में, त्रिर्यंच में (जाना पड़ता है)। त्रिर्यंच में हमको जाना नहीं है। पाप करना नहीं है, अनुभव तक पहुँचते नहीं है, तो पुण्य करना कि नहीं करना? ऐसा प्रश्न नहीं किया कि पुण्य से धर्म होता है (कि नहीं होता है), ऐसा प्रश्न नहीं किया। पुण्य करना कि पुण्य नहीं करना? अनुभव-क्रिया (तक) पहुँच सकते नहीं है, पाप की क्रिया करना नहीं है, तो बाकी तो रह गया पुण्य, तो पुण्य करना कि नहीं करना? ऐसा प्रश्न आया।

तो गुरुदेव ने क्या कहा प्रश्न के उत्तर (में)? जब-जब पुण्य का परिणाम आवे, पाप का परिणाम आवे, तभी-तभी ऐसे विचारना कि पुण्य-पाप के परिणाम जो आस्रव-तत्त्व हैं, उससे मेरा आत्मा भिन्न है, ऐसे बार-बार विचार करना। पुण्य करना, ऐसा भी नहीं कहा और नहीं करना, (ऐसा) भी नहीं कहा। पुण्य करना, ऐसा भी नहीं कहा और नहीं करना, ऐसा भी नहीं कहा। तो क्या कहा? कि जो आत्मा कर सकता है वो कहा। आत्मा ज्ञान करनेवाला है। क्या कहा? कि पुण्य-पाप से भिन्न मेरा आत्मा है, ऐसा बार-बार आत्मा का विचार करना। भेदज्ञान का विचार करना। बोलो! पुण्य करना, ये भी नहीं कहा और नहीं करना, ये भी नहीं कहा। ऐसी बात बताते हैं।

मुमुक्षु:- उसने तो ऐसा (प्रश्न) रखा था (जैसे) मुँह फाड़कर ही बैठा था कि अभी बोलेगा गुरु कि बाँध दिया गुरु को।

उत्तर:- हाँ! गुरु को बाँध दिया। उसकी (शिष्य की) आशा ऐसी थी, लेकिन जवाब दूसरा आया।

मुमुक्षु:- दूसरा ही आवे ना।

मुमुक्षु:- भली होनहार है!

उत्तर:- दूसरा ही आवे ना। पुण्य करना, ऐसे उपदेश का अर्थ क्या है? कि (जाओ) तुम दुःखी होओ। इसका अर्थ क्या हुआ? ऐसा आशीर्वाद ज्ञानी देते नहीं है। क्यों? वो तो सब शास्त्र की बात कहता हूँ मैं कि पुण्य और पाप आस्रव-तत्त्व हैं, उसमें आकुलता होती है। पुण्य भी आकुलता और पाप भी आकुलता क्योंकि आस्रव-तत्त्व का लक्षण ही दुख है। तो पुण्य करो, तो इसका अर्थ कि तुम दुःखी होओ। ऐसा उपदेश ज्ञानी का होता नहीं है। पुण्य-पाप से भिन्न तेरे आत्मा का ज्ञान कर ले।

मुमुक्षु:- बहुत सरस! बहुत स्पष्ट! बहुत अच्छी बात है! भूल निकाल दी।

उत्तर:- ये अनादि का प्रश्न ऐसा होता है, आजकल का नहीं है। अनादि का ऐसा (ही) प्रश्न है।

मुमुक्षु:- ज्ञानी भी ऐसा ही जवाब देते हैं।

उत्तर:- (ज्ञानी) ऐसा ही जवाब देते हैं। पुण्य-पाप से भिन्न तेरे आत्मा का ध्यान कर, ज्ञान कर, ध्यान कर, उसका श्रद्धान कर ले। आहाहा! सुखी होने का ही रास्ता बताते हैं। दुःखी होने का रास्ता बतावें ही नहीं (ज्ञानी)। जो पुण्य करो तो कल्याण होगा, आहाहा! ये ज्ञानी का उपदेश नहीं है। वाणी के द्वारा उनको ख्याल आ जाता है, सुननेवालों को। आहाहा! क्योंकि पुण्य भी सोने की बेड़ी, पाप लोहे की बेड़ी, पुण्य सोने की बेड़ी, सोने की बेड़ी। अच्छा! कोई तुमको लोहे की बेड़ी से बाँधना नहीं है, आज सोने की बेड़ी से बाँधना है। भाई साहब! मेरे को बंधना नहीं है। अरे भाई! सोने की बेड़ी! बेड़ी में बंधन है ना। पुण्य के परिणाम भी भाव-बंध और पाप के परिणाम भी भाव-बंध हैं। भाव-मोक्ष नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु:- दौलतराम जी ने छहढाला में लिखा है कि 'राग आग दहे सदा'। इसमें भेद नहीं किया कि, पाप-राग आग है और पुण्य-राग आग नहीं है, ऐसा भेद नहीं पाड़ा।

उत्तर:- ऐसा भेद नहीं पाड़ा (क्योंकि) भेद है ही नहीं। पुण्य-पाप में जो भेद करता है, वो घोर संसार में रखड़ता (भटकता) है, ऐसा कुंदकुंद भगवान का वचन है। पुण्य-पाप एक कोटि का दुखदायक (परिणाम), बंध का कारण (है)। आहाहा! हेय तत्त्व है। पाप हेय है और पुण्य उपादेय है, ऐसा है नहीं। आहाहा! हेय का अर्थ द्वेष-वाचक नहीं, उपेक्षा-वाचक (है)। मेरा स्वभाव नहीं है, बस इतना ही। राग-द्वेष करने की बात तो जिनागम में है ही नहीं। आहाहा!

आत्मा का हित करने की बात है। बाकी जानने का विषय तो बहुत है, हज़ारों आगम हैं। आयुष्य कम, प्रवृत्ति ज्यादा, निवृत्ति कम, बुद्धि कम। समझे? उसमें तो प्रयोजनभूत अपना काम कर लेना चाहिए।

मुमुक्षु:- बहुत बढ़िया साहब!

मुमुक्षु:- उनका प्रश्न है बाबूजी का।

उत्तर:- बहुत अच्छा! कोई भी प्रश्न कर सकते हैं।

मुमुक्षु:- बहुत पुराना प्रश्न है इनका। हम लोग पढ़ते थे, तब का प्रश्न है।

उत्तर:- बहुत अच्छा! ठीक है! प्रश्न तो होता है और प्रश्न करने से अपना समाधान करने की भावना होती है। प्रश्न करनेवाले को मूंझवण (असमंजस) होती है, तो प्रश्न तो होता है। तो उसका सही उत्तर मिले, तो

उसको मार्गदर्शन मिल जाता है। प्रयोजन तो यही है।

मुमुक्षु:- सही उत्तर मिलेगा आज, इसलिए प्रश्न आ गया।

उत्तर:- अच्छा!

मुमुक्षु:- श्रीमान् जी! श्री रामचंद्र जी क्षायिक-सम्यग्द्रष्टि थे। जब क्षायिक-सम्यग्द्रष्टि थे, तब उन्होंने बड़ी-बड़ी लड़ाईयाँ (लड़ीं), महीनों तक लड़ते रहे, जिसमें लाखों पाँच-इन्द्रिय जीवों को मौत के घाट उतारते रहे। इतना बड़ा पाप तो साधारण मनुष्य भी नहीं कर सकता है। तब वो तो क्षायिक-सम्यग्द्रष्टि (थे)। तब क्षायिक सम्यकत्व का क्या महत्व रहा?

उत्तर:- पहले तो रामचंद्रजी क्षायिक-सम्यग्द्रष्टि थे, एक बात और पुरुषोत्तम पुरुष (थे)। उस (ही) भव में जिनका मोक्ष हो गया, उस ही भव में। समझे? मोक्षमार्ग में तो थे और मोक्ष हो गया। तो ऐसे रामचंद्रजी (ने) क्षायिक-सम्यग्द्रष्टि होने पर भी, ऐसी लड़ाई क्यों किया (लड़ी) कि जिसमें हजारों-लाखों संज्ञी पंचेंद्रिय मनुष्यों का घात हो गया? समझ गए? मनुष्य का घात हो गया, घात किया नहीं उन्होंने। घात हो गया, तो उन्होंने किया नहीं। कर्ताबुद्धि वाले को ऐसा लगता है कि रामचंद्रजी ने किया। मगर रामचंद्रजी ने (घात) जाना, मगर (घात) किया नहीं है। आत्मा को जानते-जानते वो जो होता है, वो काम होता है, उसको जानते हैं। उन्होंने किया-विया नहीं है।

और दूसरी बात कि सचमुच तो उपादानरूप से तो किया नहीं, मगर निमित्त-कर्ता भी वो नहीं है। और ये निमित्त होता है उसमें, वो तो पर(द्रव्य) के घात में पर(द्रव्य) निमित्त होता है। आत्मा और आत्मा के आश्रय से हुआ परिणाम, संवर-निर्जरा, उसमें निमित्त होता नहीं है।

हाँ! इतनी बात है, थोड़ा अस्थिरता का राग है, थोड़ा अस्थिरता का राग है। चारित्र का दोष लगता है। श्रद्धा का दोष लगता नहीं है क्योंकि उसमें कर्ताबुद्धि छूट गई, एकत्वबुद्धि छूट गई है। वो अंदर की रमत है और बाहर से देखो तो कर्ता लगता है, रामचंद्र जी। समझे? मगर अंदर का जो तपास (खोज) करे, तो ख्याल में आवे। अंतर की बात है, अंदर की रमत है। भेदज्ञानी को कर्ता-भोक्ता की बात छूट गई है। होता है, उसको जानता है। हाँ! इतना सही है कि थोड़ा चारित्र का दोष है। स्वरूप में लीन नहीं रह सकता है तो चारित्र का ज़रा दोष (आता है), थोड़ा आता है। अल्प-दोष, वो अल्प-दोष है। अनंत संसार का कारण नहीं है। एक बात।

दूसरा, एक द्रव्य को दूसरा द्रव्य कोई मार सकता नहीं है और जीवित कर सकता नहीं है। वो मैन (मुख्य) चीज़ जैनदर्शन की है। आहाहा! वो उसने ये मारा और मेरे को वो मारता है, वो एक दूसरे को कोई मार सकता नहीं है। उसके आयुष्य का क्षय होने का काल था, तब बाह्य-निमित्त कैसा है, (बस) ऐसा ज्ञान कराया है। बाकी किया-विया नहीं है, ऐसी अंदर की बात है। आहाहा! हाँ! राग है इतना, इतना दोष तो है। ज्ञानी को भी छूट नहीं है, थोड़ा दोष तो लगता है। जानता है कि ये दोष है। मगर स्वरूप में लीन नहीं रहता है, तो दोष आ जाता है। वो निर्जरा का हेतु है। आहाहा! क्या? वो बात अलौकिक है। ज्ञानी की बात ज्ञानी जाने। दूसरा कौन जाने? क्षायिक-सम्यग्द्रष्टि है वो तो बराबर, तद्भव (में) ही मोक्ष होने वाला था। बराबर! आहाहा! मगर थोड़ा राग ऐसा आता है। राग का चाला है, स्वांग है। जानता है (कि) वो लम्बे टाइम टिकनेवाला नहीं है।

ऐसे शांतिनाथ भगवान, अरहनाथ, कुंथुनाथ - चक्रवर्ती, कामदेव और तीर्थंकर। समझे? चक्रवर्ती को तो

९६००० रानियाँ होती हैं। अरे! चक्रवर्ती को ९६००० रानियाँ है ही नहीं। उसके पास तो ज्ञान है। आहाहा! आत्मा का ज्ञान और रानी है, उसका भी ज्ञान। और रानी मेरी है, ऐसा अभिप्राय में है ही नहीं। जल कमलवत् जैसी स्थिति होती है, ज्ञानी की, ऐसी अंदर की बात है। बचाव नहीं करता है।

मुमुक्षुः- भोगता क्यों है फिर उसको? जब राग नहीं है तो फिर भोगता क्यों है?

उत्तरः- राग, आत्मदृष्टि वालों को राग होता है, मगर भोक्ता नहीं है क्योंकि उसके अंदर एकत्वबुद्धि नहीं है। आनंद का भोक्ता है और दुःख का ज्ञाता है। क्या कहा? आनंद का तो भोक्ता है और दुःख का ज्ञाता है। आनंद का भी भोक्ता और दुःख का भी भोक्ता, ऐसा है नहीं। अज्ञानी दुःख का भोक्ता है, ज्ञानी आनंद का भोक्ता है और दुःख का ज्ञाता रहता है। भोक्ता बनता नहीं है।

मुमुक्षुः- रहस्यमयी बात है!

उत्तरः- रहस्यमयी बात है। अंदर की बात है। वो सब सर्वज्ञ भगवान ने बताई, शास्त्र में भी सब है। शास्त्र में भी सब, सब बात (का) है, शास्त्र में खुलासा। चारों अनुयोगों में, सबमें खुलासा है। प्रथमानुयोग में तो ऐसी बात आती है कि कोई सहन न कर सके। ऐसी-ऐसी बात भी आती है। आहाहा!

देखो! माघनंदी आचार्य हो गए। समर्थ। समझे? आहाहा! तो जब कुम्हार ने उनको बताया कि ज़रा ख्याल करना (रखना, ऐसा कहा) उसको, लड़की को, मैं अभी आता हूँ। वो, उसका पिताजी गया गाँव में और लड़की वहाँ रही ध्यान रखने के लिए। कच्चा होता है ना मिट्टी का (उसका ध्यान रखने)। इस (बीच) में क्या हुआ? कि आँधी आ गई एकदम, बादल, एकदम घनघोर हो गया। तो वो पिताजी ने घर पर देखा, आहाहा! अभी बरसात टूट जाएगा, टूट पड़ेगा और वो सब हमारे (मिट्टी के) बर्तन सब ख़तम (हो जायेंगे), पानी हो जायेंगे। समझे? वो वहाँ चिंता करते थे। वो वहाँ रोने लगी छोकरी, बहुत रोने लगी, बहुत रोने लगी। तो माघनंदी आचार्य गुफा में बैठे थे और उधर का आवाज़ आया। आहाहा! देखो! बनाव कैसे बना? तो उसके (लड़की के) पास आये, (बोले कि) क्या है? कि मेरे पिताजी मेरे को ध्यान रखने को बोल गए, मगर मैं कैसे ध्यान रखूँ? अभी तो बरसात टूट पड़ेगा इसलिए मैं रोती हूँ। हमारी मेहनत सब बेकार हो जाएगी और मेरे पिताजी मेरे को डाँटेंगे, मारेंगे। समझे?

अच्छा! ऐसा है? तो कोई करुणा आ गई। बनाव बनने वाला था, बनाव बनने वाला था। उन्होंने पिच्छी ऐसे फेरी तीन-बार। निंभाड़ा होता है ना, उसके आजु-बाजू। और फिर बरसात-आँधी फटी, एक बूँद पानी की उसमें नहीं पड़ी। आज-बाजू से पानी निकल गया। वो पिताजी दौड़कर इधर आया। देखा तो ओहो! कि ये क्या चमत्कार है? लड़की को पूछा क्या हो गया? कि एक योगी महाराज धर्मात्मा आये थे। तो उन्होंने ये बचा दिया, ये अपना काम (बन गया)।

अभी मेरी प्रतिज्ञा है कि लगन (शादी) करूँ तो उनके साथ करूँ। अरे! वो तो ब्रह्मचारी, साधु, भावलिंगी-संत, आनंद को भोगनेवाले। आहाहा! लड़की ने तो प्रतिज्ञा कर ली कि लगन (शादी) करूँ, तो उसके साथ। समझे?

तो पिताजी वहाँ गए। उनको विनती की कि (शादी करो, नहीं तो) हमारी लड़की मर जायेगी। (आचार्य माघनंदी) क्या है? क्या है? कि अभी तो तू बच गया ना। (पिता कहे) कि नहीं, ऐसा नहीं। कि अभी उसने प्रतिज्ञा

कर लिया है कि आपके साथ लगन करना है।

बोलो! चारित्रवंत धुरंधर भावलिंगी-संत, वो तो सिद्ध-नगरी में जानेवाले हैं। तो बनाव क्या बना? कि वो होनेवाला था। होनेवाला होता है। नहीं होनेवाला हो गया, ऐसा है नहीं। कर्ताबुद्धिवालों को ऐसा लगता है (कि नहीं होनेवाला हो गया)। ज्ञाताबुद्धिवालों को ऐसा लगता है कि होनहार होता है। आहाहा! होने योग्य होता है।

उसके साथ लगन (शादी) किया। समझे? और घड़ा बनाया, मटका बनाने लगा। क्योंकि बनाना चाहिए कि नहीं? लेकिन मोर-पिच्छी और कमंडल वहाँ रखा था। समझे? तो ऐसा हुआ, कोई संघ के अंदर प्रायश्चित का प्रश्न आया। मुनि को कोई दोष लगे, अतिचार (लगे), अनाचार नहीं। कोई अतिचार लगे, तो दोष हो, तो प्रायश्चित ले लेते हैं। तो वो प्रायश्चित का पाठ किसी को ख्याल नहीं। तो आपस-आपस में चर्चा हुई कि एक माघनन्दि आचार्य (हैं), उनके पास ये विद्या है, पाठ है। तो किसी ने कहा कि वो तो हो गया कुम्हार, वो तो गृहस्थ हो गया। सम्यग्दर्शन तो रह गया। सम्यकत्व नहीं गया था, ध्यान रखना। हाँ!

सम्यग्दर्शन का घातक वो परिणाम नहीं है। चारित्र का घातक जरूर है। चारित्र गया और सम्यग्दर्शन रहा। तो आया मुनि कि एक हमारी विनती है कि प्रायश्चित का पाठ हम नहीं जानते। अच्छा! आज तक हमारा नाम (चलता है)? बस! वैराग्य आ गया। मोर-पिच्छी, कमंडल लेकर भागे। छोकरी रोने लगी। अभी हमारा राग पूरा हो गया, ख़तम। समझे?

यानि दो विभाग अलग हैं। वो दो विभाग जीव को ख्याल में नहीं आता है। श्रद्धा का गुण और चारित्र का दोष, ये साथ में ही रहते हैं, साथ में ही रहते हैं। एकत्व नहीं होता है। साथ-साथ में श्रद्धा का गुण और चारित्र का दोष, साथ में ही रहता हैं। दो गुण अलग हैं, दो गुण की योग्यता अलग है, दो गुण का निमित्त भी अलग-अलग है। आहाहा!

एक दफ़े गुरुदेव बैठे थे और एक भाई आया और (कहा) कि आप पुण्य नहीं करने का कहते हो, तो सब पाप में चले जायेंगे। मैं बैठा था, साथ में, पास में। मैंने उस भाई को कहा कि पुण्य से धर्म मानना छुड़ाते हैं। पुण्य छोड़ने की बात इधर है ही नहीं। पुण्य से धर्म मानने की मान्यता को छुड़ाते हैं। विपरीत-श्रद्धा का त्याग कराते हैं। पुण्य छोड़ो, ऐसा उपदेश नहीं है। (पुण्य को) करता (ही) नहीं है, तो छोड़े कौन? करता भी नहीं है, तो छोड़ता कौन है? आहाहा! जानता है। आता है, तो जानता है और जाता है, तो जानता है और आत्मा टिकता है, उसको भी जानता है। टिकनेवाले को ही जानता है। कोई आवे और कोई जावे, उसको भी जानता है। आत्मा में रहता है ज्ञानी तो, ऐसी बात है।

कोई जैनदर्शन में छूट नहीं है। पुण्य छोड़कर पाप का उपदेश तो है ही नहीं। पुण्य से धर्म मानना छोड़ दो। पुण्य तो साधक को भी, मुनिराज को, पाँच महाव्रत आता है, वो पुण्य-तत्त्व है। वो पुण्य-तत्त्व है कि नहीं? मगर वो पाँच-महाव्रत बंध का कारण है, ऐसा जानता है। वो संवर-निर्जरा का कारण नहीं है, ऐसा जानता है। समझे?

मुमुक्षु:- तीर्थंकर को क्यों नहीं आता पाँचवा गुणस्थान? तीर्थंकर को पाँचवा गुणस्थान क्यों नहीं आता?

उत्तर:- तीर्थंकर को? पाँचवा गुणस्थान आ जाता है, उसमें क्या है? चौथा, पहले चौथा आता है, बाद में पाँचवे में ही रहते हैं।

मुमुक्षु:- नहीं पाँचवे में नहीं रहते?

मुमुक्षु:- नहीं आठ वर्ष के बाद पाँचवा हो जाता है।

उत्तर:- आठ वर्ष के बाद पाँचवा हो जाता है। आठ वर्ष तक तो चौथा रहता है, अविरत सम्यग्द्रष्टि। तीर्थंकर आठ वर्ष (के) हुये, आठ वर्ष के बाद (उनको) पंचम गुणस्थान आ जाता है।

मुमुक्षु:- पुराण पढ़कर देखो। पुराण में आता है।

मुमुक्षु:- पुराण में लिखा है, चौथे में आकर जम्प मारते हैं, छट्ठे में सीधे निकल जाते हैं। महान पुरुषों की महानता है, पाँचवे में नहीं आते हैं।

उत्तर:- ये तो किसी-किसी को ऐसा होता है।

मुमुक्षु:- तीर्थंकर के बारे में ऐसा लिखा है और किसी के बारे में नहीं।

उत्तर:- तीर्थंकर! कोई जीव, सामान्य जीव, चौथा में से चढ़कर छठवें-सातवें में आ सकता है, कोई उसमें बाधा नहीं है। बाकी तीर्थंकर को आठवें वर्ष के बाद पंचम गुणस्थान आता है, ऐसा प्रथमानुयोग में लिखा है। पढ़ लेना।

मुमुक्षु:- परम कृपालु श्री सद्गुरुदेवनो जय हो!

ॐ